वेदोंमें आध्यात्मिक संदेश

वेदमें आध्यात्मिक संदेश

('मानस-रत्न' संत श्रीसीतारामदासजी)

वेद ज्ञान-विज्ञानके सागर हैं। उनका अक्षर-अक्षर सत्य है। वेद ही मानव और पशुके अन्तरको स्पष्ट करते हैं। क्या करना चाहिये, क्या नहीं करना चाहिये—यह वेदोंसे ही हमें पता चलता है। वेदोंके प्रति पूर्ण निष्ठा रखकर उनके बताये गये मार्गपर चलकर ही मानव-जीवनको सार्थक बनाया जा सकता है।

देव-दुर्लभ मनुष्य-शरीरका प्रयोजन सकल दुःख-निवृत्ति एवं परमानन्दकी प्राप्ति है। केनोपनिषद् (२। ५)-में कहा गया है—'**इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।**' अर्थात् इस मानव-शरीरमें यदि परम तत्त्वका बोध हो गया तो मानव-शरीर सार्थक हो गया, अन्यथा मानो महान् विनाश या सर्वनाश हो गया। अतः हमलोग सबको उत्पन्न करनेवाले परमदेव परमेश्वरकी आराधनारूप यज्ञमें लगे हुए मनके द्वारा परमानन्दकी प्राप्तिके लिये पूर्ण शक्तिसे प्रयत्न करें—

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे। स्वर्ग्याय शक्त्या॥

(यजु० ११। २)

अर्थात् हमारा मन निरन्तर भगवान्‌की आराधनामें लगा रहे और हम भगवत्प्राप्तिजनित अनुभूतिके लिये पूर्ण शक्तिसे प्रयत्नशील रहें।

हम भगवान्‌का ही एकमात्र आश्रय लेकर उनमें ही तन्मय बनें—यही वेदोंका आध्यात्मिक संदेश है—

मा चिदन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत॥

(ऋक्० ८। १। १)

'हितकारी उपासको! सब एकाग्र होकर प्रसन्न होनेपर अभीष्टको पूर्ण करनेवाले परमेश्वरकी ही स्तुति करो एवं उनके ही गुणों तथा महिमाका बारम्बार चिन्तन करो—कीर्तन करो। परमात्माके अतिरिक्त अन्य किसीकी भी उपासना न करो; आत्मश्रेयका नाश न करो।'

वैदिक संस्कृतिकी मूलभित्ति त्याग और तपस्यापर आधृत है। वह नरको नारायण बनाती है—

अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रमयुतो मे प्राणोऽयुतो मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः॥

(अथर्व० १९। ५१। १)

'मैं परिपूर्ण हूँ, मैं अखण्ड हूँ। मेरी आत्मा अखण्ड है, चक्षुशक्ति अखण्ड है, श्रीशक्ति अखण्ड है। मेरे प्राण विश्वात्माके प्राणसे संयुक्त हैं, मेरे श्वासोच्छ्‌वास भी विश्वपुरुषके श्वास-प्रश्वास सम्बद्ध हैं। मेरी आत्मा विश्वात्मासे विभक्त नहीं है। मेरी सम्पूर्ण सत्ता उससे अविभिन्न एवं अखण्ड है।'

आत्मविकासके लिये भगवान्‌की कृपाको साध्य एवं साधन मानकर उसे ही पथ-प्रदर्शक, आत्मबलदायक एवं प्रेरणादायी स्रोत मानते हुए वेद प्रार्थना करते हैं—

न ह्यन्यं बळाकरं मर्डितारं शतक्रतो। त्वं न इन्द्र मृळय॥

(ऋक्० ८। ८०। १)

'विश्वरूप प्रभो! आपसे भिन्न अन्य कोई सुखदाता नहीं है, फिर हम अन्यत्र क्यों भटकें। हे सुखस्वरूप! सत्यतः आप ही सब सुखोंके मूल स्रोत हैं। हमें वही सुख चाहिये जो साक्षात् आपसे प्राप्त हुआ हो। उसी सुखसे हमारा चित्त तुष्ट हो।'

वेद चाहते हैं कि व्यक्तिके चित्तवृत्तिरूप राज्यमें प्रतिपल पवित्र, वरेण्य एवं उर्वर विचार-सरिता बहती रहे, जिससे अन्तःकरण दैवी सम्पदाओंका केन्द्र बने—

तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ (ऋक्० ३। ६२। १०)

'सच्चिदानन्दरूप परमात्मन्! आपके प्रेरणादायी विशुद्ध तेजःस्वरूपभूत दिव्य रूपका हम अपने हृदयमें नित्य ध्यान करते हैं। उससे हमारी बुद्धि निरन्तर प्रेरित होती रहे। आप हमारी बुद्धिको अपमार्गसे रोककर तेजोमय शुभमार्गकी ओर प्रेरित करें। उस प्रकाशमय पथका अनुसरण कर हम आपकी ही उपासना करें

एवं आपको ही प्राप्त हों। हमारी इस प्रार्थनाको आप पूर्ण करें; क्योंकि आप ही पूर्णकाम हैं, सर्वज्ञ हैं एवं परम शरण्य और वरेण्य हैं।'

वेदोंकी भावना है कि हम अनन्य एकाग्रतासे, उपासनासे ईश्वरको प्रसन्न करें और वह हमारे योग-क्षेमादिको सर्वदा सम्पन्न करे—

नू अन्यत्रा चिदद्रिवस्त्वन्नो जग्मुराशसः। मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिः॥ (ऋक्० ८। २४। ११)

'संसारको धारण करनेवाले हे भगवन्! हमारी अभिलाषाएँ आपको छोड़कर अन्यत्र कहीं कदापि न गयी हैं, न जाती हैं, अतः आप अपनी कृपाद्वारा हमें सब प्रकार सामर्थ्यसे सम्पन्न करें।'

ज्ञानकी पराकाष्ठापर भक्तिका उदय होकर भक्तिके सदा परिपूर्ण होनेसे वृत्तिमें मुक्तिकी वासना भी नहीं उठती। ऐसा जीवन ही वैदिक संस्कृतिका आदर्श है—

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः॥ (अथर्व० १। ५। २, ऋक्० १०। ९। २)

'प्रभो! जो आपका आनन्दमय भक्तिरस है, हमें वही प्रदान करें। जैसे शुभकामनामयी माता अपनी संतानको संतुष्ट एवं पुष्ट करती है, वैसे ही आप (मुझपर) कृपा करें।'

ज्ञान एवं कर्मका अन्तिम परिणामरूप भक्ति और उस भक्तिके अन्तिम परिणामरूप उन विराट् विश्वरूप पुरुषोत्तमकी शरणागतिको ही वेद श्रेयमार्गमें महत्त्वपूर्ण मानते हैं—

क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे। मृळा सुक्षत्र मृळय॥ (ऋक्० ७। ८९। ३)

'हे परम तेजोमय! परम पवित्र परमेश्वर! दीनता-दुर्बलताके कारण मैं अपने संकल्पसे, प्रज्ञासे, कर्तव्यसे उलटा चला जाता हूँ। शुभशक्तिशालिन्। मुझपर कृपा करके मुझे सुखी करें।'

वेद ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि ईश्वर हमें सन्मार्गपर लाये, वह हमारे अन्तःकरणको उज्ज्वल कर आत्मश्रेयके सर्वोच्च शिखरको प्राप्त करा दे—

भद्रं मनः कृणुष्व॥ (साम० १५६०)

'हे प्रभु! हमारे मनको कल्याणमार्गमें प्रेरित करें।'

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद् भद्रं तन्न आ सुव॥ (ऋक्० ५। ८२। ५)

'हे सारे जगत्के उत्पादक—प्रेरक देव! तू हमारे सारे दुराचरणोंको दूर कर दे और सभी कल्याणकारी गुण हममें भर दे।'

मानव-मनको मोह, क्रोध, मत्सर, काम, मद और लोभकी दुर्वृत्तियाँ सदैव घेरे रहती हैं। इन छः मानसिक शत्रुओंके निवारणके लिये वैदिक मन्त्रोंमें पशु-पक्षियोंकी उपमासे दमन करनेकी सम्मति दी गयी है, जैसे—

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र॥

(अथर्व० ८। ४। २२, ऋक्० ७। १०४। २२)

'**उलूकयातुम्**' (उलूकयातु)—यह अन्धकारप्रिय, प्रकाशके शत्रु उल्लूकी वृत्ति है—'संशयीवृत्ति'।

'**शुशुलूकयातुम्**' (शुशुलूकयातु)—यह क्रोधी और क्रूर भेड़ियेकी वृत्ति है—'आक्रामकवृत्ति'।

'**श्वयातुम्**' (श्वयातु)—यह दूसरों और अपनोंपर भी गुर्राकर दौड़नेवाले कुत्तेकी वृत्ति है—'चाटुकारवृत्ति'।

'**कोकयातुम्**' (कोकयातु)—यह चकवा-चकवीकी वृत्ति है—'असामाजिकवृत्ति'।

'**सुपर्णयातुम्**' (सुपर्णयातु)—यह ऊँची उड़ान भरनेवाले गरुडकी वृत्ति है—'अभिमानीवृत्ति'।

'**गृध्रयातुम्**' (गृध्रयातु)—यह दूसरोंकी सम्पत्ति छीन लेनेवाले गिद्धकी वृत्ति है—'लोलुपवृत्ति'।

अतः ओ मनुष्य! तू साहसी बनकर उलूकके समान 'मोह', भेड़ियेके समान 'क्रोध', श्वानके समान 'मत्सर', कोकके समान 'काम', गरुडके समान 'मद' और 'लोभ' को गिद्धके समान समझकर मार भगा। अर्थात् तू प्रभुसे बल माँगकर इन छः प्रकारकी राक्षसीय भावनाओंको पत्थरके सदृश कठोर साधनोंसे मसल दे।

वेदोंकी मान्यता है कि तपःपूत जीवनसे ही मोक्षकी उपलब्धि होती है—

यस्मात्पक्वादमृतं संबभूव तो गायत्र्या अधिपतिर्बभूव।
यस्मिन्वेदा निहिता विश्वरूपास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम्॥

(अथर्व० ४। ३५। ६)

'जो प्रभुगुण गानेवाली गायत्रीद्वारा अपने जीवनकी'

आत्मशुद्धि कर स्वामी बन गया है, जिसने सब पदार्थोंका निरूपण करनेवाले ईश्वरीय ज्ञान वेदको जीवनमें पूर्णतः धारण कर लिया है, वही मानव वेदज्ञानरूपी पके हुए ओदनके ग्रहण-सदृश मृत्युको पारकर मोक्षपद प्राप्त करता है, जो मानव-जीवनका अन्तिम लक्ष्य है।'

वेद भगवान्‌के संविधान हैं। इनमें ऐसे अनेक मन्त्र हैं, जिनसे शिक्षा प्राप्त कर मनुष्य अध्यात्मके सर्वोच्च शिखरपर पहुँच सकता है। जैसे—

ऋतस्य पथा प्रेत॥ (यजु० ७। ४५)

'सत्यके मार्गपर चलो।'

ओ३म् क्रतो स्मर। क्लिबे स्मर। कृतꣳस्मर॥

(यजु० ४०। १५)

'यज्ञादि कर्मोंको स्मरण रखो। अपनी सामर्थ्य एवं दूसरेके उपकारको स्मरण रखो।'

वेदोंमें इस लोकको सुखमय तथा परलोकको कल्याणमय बनानेकी दृष्टिसे मनुष्यमात्रके लिये आचार-विचारोंके पालनका विधान तो किया ही गया है, साथ ही आध्यात्मिक साधनामें बाधक अनेक निन्दित कर्मोंसे दूर रहनेका निर्देश भी दिया गया है। जैसे—

अक्षैर्मा दीव्यः। (ऋक् १०। ३४। १३)

'जूआ मत खेलो।'

मा गृधः कस्य स्विद्धनम्। (यजु० ४०। १)

'पराये धनका लालच न करो।'

मा हिंसीः पुरुषान् पशूंश्च।

'मनुष्य और पशुओंको (मन, कर्म एवं वाणीसे) कष्ट न दो।'

वेद कथाङ्क (कल्याण-गीताप्रेस)